RNI 26281/74 रजि.नं. पी.बी./जे.एल.-011/2018-20

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 45, अंक : 23 एक प्रति 2 : रुपये

कुल पृष्ठ : 8

रविवार 30 अगस्त, 2020

विक्रमी सम्वत् 2077, सृष्टि सम्वत् 1960853121

दयानन्दाब्द : 196 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–45, अंक : 23, 27-30 अगस्त 2020 तदनुसार 15 भद्रपद, सम्वत् 2077 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

कर्म करते हुए जीवन बिता

ले०-स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

-यजु:० ४०।२

शब्दार्थ-मनुष्य **इह** = इस संसार में **शतम्+समाः** = सौ **वर्ष** = सम्पूर्ण आयु **कर्माणि** = कर्मों को, सत्कर्मों को **कुर्वन्+एव** = करता हुआ ही **जिजीविषेत्** = जीने की इच्छा करे। **एवम्** = इस प्रकार, अर्थात् **कर्म** = करते हुए **त्वयि** = तुझ **नरे** = मनुष्य में **कर्म** = कर्म न **लिप्यते** = लिप्त नहीं होता, बन्धन का कारण नहीं बनता। **इतः** = इससे **अन्यथा** = दूसरा प्रकार **न+अस्ति** = नहीं है।

व्याख्या-मनुष्य के शरीर को वेदों में क्षेत्र कहा गया है-**'स्वे क्षेत्रे अनमीवा विराज'** = अपने शरीर में नीरोग रह। शरीर को क्षेत्र कहने का विशेष प्रयोजन है। क्षेत्र में कृषिकर्म होता रहना चाहिए। बोना, काटना बराबर चलते रहना चाहिए। इसी से इसे कोई-कोई कुरुक्षेत्र भी कहते हैं। इस दृष्टि से वेद में उपदेश है-**'कुर्वन्नेवेह कर्माणि'**-कर्म करते हुए ही। कर्म की तीन गतियाँ हो सकती हैं-१. कर्म, २. विकर्म तथा ३. अकर्म। न करने को अकर्म तथा उलटे कर्म को विकर्म कहते हैं। शेष कर्म का अर्थ सुतरां सत्कर्म हुआ। कर्म-अकर्म की विवेचना बहुत गहन है। गीता में कहा है-**'किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।'** क्या कर्म है और क्या अकर्म है, इस विषय में कवि=क्रान्तदर्शी भी विमुग्ध हैं, तथापि स्थूलरूप से कर्म, विकर्म, अकर्म की उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचना सभी को मान्य है। इससे पूर्व यजुर्वेद [४०।१] में कहा है-**'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'** = किसी के धन का लालच मत कर! 'पराये धन का लालच' समस्त बुरे कर्मों का उपलक्षण है, अर्थात् बुरे कर्म मत कर। इससे विकर्म का निषेध हो गया। कर्म और अकर्म के विवाद में **'कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्'** से 'अकर्म' का निषेध कर दिया गया है। शेष कर्म=सुकर्म रह गये। इससे अर्थ हुआ-मनुष्य इस संसार में सम्पूर्ण आयु सत्कर्म करता हुआ ही जीने की इच्छा करे।

कहावत है-**'लोकोऽयं कर्मबन्धनः'** = यह संसार कर्मों से बँधा है, अर्थात् कर्म बन्धन के कारण हैं। वेद इसका खण्डन करता हुआ कहता है-**'एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे'** = ऐसा करने पर कर्म तुझे नहीं बाँधेगा और कोई उपाय नहीं है। जब कामना छोड़कर केवल कर्त्तव्य-बुद्धि से, भगवान् की आज्ञा समझकर कर्म किये जाते हैं, तब वे कर्म बन्धन के कारण नहीं बनते। इच्छा, वासना के कारण किये कर्म बन्धन के कारण बनते हैं, क्योंकि यदि इच्छा पूरी हो गई तो हर्ष होता है, यदि इच्छा पूरी न हुई, उसका विघात हुआ, तो विषाद होता है। प्रसाद और विषाद बन्धन के कारण हैं। जब किसी इच्छा को सामने रखकर कार्य न किया जा रहा हो, तो इष्टसिद्धि या वासनाविघात का अवसर न होने से बन्धन के हेतु प्रसाद या विषाद उत्पन्न ही नहीं होते।

(स्वाध्याय संदोह से साभार)

यः सोमकामो हर्यश्वः सूरिर्यस्माद् रेजन्ते भुवनानि विश्वा।
यो जघान शम्बरं यश्च शुष्णं य एकवीरः स जनास इन्द्रः।।

-अथर्व. २०.३४.१७

भावार्थ-जो परमेश्वर सर्वव्यापक सर्वज्ञ परमैश्वर्यवान् सब ऐश्वर्य का उत्पादक, ऐश्वर्य का दाता है और जो प्रभु आप एकवीर होकर सारे संसार को अपने नियम में चला रहा है, उस महासमर्थ जगत्पिता की कृपा से ही पुरुष ऐश्वर्य और सुख को प्राप्त हो सकता है।

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।

-उ० १३.१५.५

भावार्थ-हे जगदीश्वर! अन्तरिक्ष, द्युलोक, पृथिवी, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा आदि यह सब आपकी कृपा से सदा भय-राहित्य को करने वाले हों। हम सब निर्भय होकर आपकी प्रेम भक्ति में लग जाएँ।

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्:।
अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।।

-अथर्व० १९.१५.६

भावार्थ-हे सर्व भयहर्ता परमात्मन्! मित्र से हमें अभय, अर्थात् भय से अन्य हितफल, सर्वदा प्राप्त हो। शत्रु से अभय हो, जो ज्ञात शत्रु है उससे तथा अज्ञात शत्रु से भी भय-राहित्य हो, रात्रि में तथा दिन में अभय हो। पूर्व पश्चिम आदि सब दिशा, हमारे हित के करने वाली हों। यह सब फल आपकी कृपा से प्राप्त हो सकते हैं, आपकी कृपा से बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्।
शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः।।

-अथर्व० १९.९.१

भावार्थ-हे दयामय परमात्मन्! आपकी कृपा से द्युलोक, भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र, जल और सब प्रकार के अन्न, हमें सुखकारक हों। सब स्थानों में हम सुखी रहकर आपके अनन्त उपकारों को स्मरण करते हुए, आपके ध्यान में मग्न रहें आपसे कभी विमुख न होवें ऐसी सब पर कृपा करो।

वेदों में ब्रह्म का स्वरूप एवं कार्य

ले.-शिवनारायण उपाध्याय दादावाड़ी कोटा, (राजस्थान)

वेदों में सबसे अधिक वर्णन ब्रह्म के स्वरूप और क्रिया कलापों का ही हुआ है। इस लेख में हम वहीं से संक्षेप में इस विषय पर विचार कर रहे हैं। ब्रह्म सृष्टि का स्रष्टा है और वह सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व भी था। वास्तव में ब्रह्म, जीव, और प्रकृति तीनों ही अज हैं और चूंकि इनकी उत्पत्ति नहीं हुई है इसलिए इनका नाश भी असम्भव है। ब्रह्म का कार्य है प्रकृति के द्वारा सृष्टि की उत्पत्ति करना और प्रकृत से बने हुए शरीर में जीवात्मा को निवास देना। इस विषय पर हम पहले यजुर्वेद के आधार पर विचार कर रहे हैं।

ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरूचो वेनऽआवः।

स बुध्न्याऽ उपमाऽ अस्य विष्ठाः सतश्च योनिम सतश्च वितः।। यजुर्वेद 13.3

अर्थ-जो (पुरस्तात्) सृष्टि उत्पत्ति के आदि में (जज्ञानम्) सबका उत्पादक और ज्ञाता (प्रथमम्) विस्तार युक्त और विस्तार कर्त्ता (ब्रह्म) सबसे बड़ा जो (सुरूचः) सुन्दर प्रकाश युक्त और प्रकाश कर्त्ता तथा सुन्दर रूचि का विषय (वेनः) ग्रहण करने के योग्य जिस (अस्य) इसके (बुधन्याः) जल सम्बन्धी आकाश में विद्यमान सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी और नक्षत्रादि (विष्ठाः) विविध स्थलों में स्थित (उपमाः) ईश्वर ज्ञान के दृष्टान्त लोक हैं उन सबको (सः) वह (आवः) अपनी व्याप्ति से आच्छादन करता है वह ब्रह्म (विसीमतः) मर्य्यादा से (सतः) विद्यमान देखने योग्य (च) और (असतः) अव्यक्त (च) और कारण के (योनिम्) आकाश रूप स्थान को (वितः) ग्रहण करता है। उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिए।

भावार्थ-सभी मनुष्यों को उस ब्रह्म की उपासना नित्य करनी चाहिए जो सभी प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध लोकों में व्याप्त है। जो सभी लोकों का प्रकाशक है और सभी आकाशीय पिण्डों को अपनी-अपनी कक्षा में निरन्तर घुमाता रहता है।

अगले मंत्र में पुनः इसी विषय को आगे बढ़ाया गया है।

हिरण्य गर्भ समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेकऽ आसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।

यजुर्वेद 13.4

अर्थ-हे मनुष्यों। जैसे हम लोग इस (भूतस्य) उत्पन्न हुए संसार का (जातः) रचने वाला और (पति) पालन करने वाला (एकः) अकेला, किसी की भी सहायता से रहित (हिरण्यगर्भः) सूर्य आदि तेजोमय आकाशीय पिण्डों का आधार (अग्रे) जगत् की रचना से पूर्व (समवर्तत) वर्तमान (आसीत्) था, (सः) वह (इमाम्) इस संसार को रचकर (उत) और (पृथिवीं) प्रकाश रहित और (द्याम्) प्रकाश सहित सूर्यादि लोकों को (दाधार) धारण करता हुआ उस (कस्मै) सुख रूप प्रजा पालने वाले (देवाय) प्रकाशमान परमात्मा की (हविषा) आत्मादि सामग्री से (विधेम) सेवा में तत्पर हों वैसे तुम भी इस परमात्मा का सेवन करो।

भावार्थ-इस मंत्र में बताया गया है कि इस सृष्टि की उत्पत्ति हुई है यह सदैव से नहीं है। इस सृष्टि का रचने वाला और धारण करने वाला ब्रह्म एक ही है। उसे अपने कार्य में किसी की भी सहायता की आवश्यकता नहीं है। वह ब्रह्म प्रकाशीय और अप्रकाशीय आकाशीय पिण्डों को धारण कर रहा है। वही उन्हें अपनी-अपनी कक्षा में निरन्तर गति करा रहा है।

इसी विषय को विस्तार देते हुए कहा गया है-

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरूणस्याग्नेः।

आऽप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।।

यजु. 13.46

अर्थ-हे मनुष्यों। आप लोग जो जगदीश्वर (देवानाम्) पृथ्वी आदि दिव्य पदार्थों के बीच (चित्रम्) आश्चर्यरूप (अनीकम्) किरणों से युक्त (मित्रस्य) प्राण (वरूणस्य) उदान और (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि के (चक्षुः) दिखाने वाले (सूर्य्यः) सूर्य के समान (उदगात्) उदय को प्राप्त हो रहा है उस के समान (जगतः) चेतन (च) और (तस्थुषः) जड़ जगत् का (आत्मा) अन्तर्यामी होकर (द्यावा पृथिवी) प्रकाश और अप्रकाश रूप जगत् और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आ) अच्छे प्रकार (आ प्राः) व्याप्त हो रहा है, उसी जगत् के रचने वाले को, पालक और संहार करने वाले व्यापक ब्रह्म की निरन्तर उपासना किया करो।

भावार्थ-जो ईश्वर सबका अन्तर्यामी भी, सब जीवों के पाप कर्मों के फलों की व्यवस्था करने वाला और अनन्त ज्ञान का प्रकाश करने वाला है उसी की उपासना मनुष्यों को नित्य करनी चाहिए।

स दुद्रवत् स्वाहुतः स दुद्रवत् स्वाहुतः।

स ब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवꣳ राधो जनानाम्।।

यजु. 15.34

अर्थ-हे मनुष्यों। (सः) वह अग्नि (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार बुलाये हुए मित्र के समान (दुद्रवत्) चलता है तथा (सः) वह (स्वाहुतः) अच्छे प्रकार निमंत्रित विद्वान् के समान (दुद्रवत्) जाता है। (सब्रह्मा) अच्छे प्रकार चारों वेदों का ज्ञाता (यज्ञः) समागम के योग्य (सुशमी) अच्छे शान्तिशील पुरूष के समान जो (वसूनाम्) पृथ्वी आदि वसुओं और (जनानाम्) मनुष्यों का (देवम्) अभीप्सित (राधः) धन रूप है उस अग्नि स्वरूप परमात्मा की उपासना करो।

ब्रह्म का स्वरूप निम्न मंत्र में स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा है।

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायम-व्रणमस्नाविरं शुद्धमपाप-विद्धम्।

कविर्मनीषी परिभू स्वय-म्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यद-धाच्छाश्वतीभयः समाभ्यः।।

यजु. 40.8

अर्थ-हे मनुष्यों। जो ब्रह्म (शुक्रम्) शीघ्रकारी, सर्वशक्तिमान् (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर से रहित (अव्रणम्) छिद्र रहित (अस्नाविरम्) नस-नाड़ी रूप के साथ सम्बन्ध रूप बन्धन से रहित (शुद्धम्) अविद्यादि दोषों से रहित होने से सदा पवित्र (अपाप विद्धम्) पाप युक्त, पापकारी और पाप से प्रीति करने वाला कभी नहीं होता (परि अगात्) सब ओर से व्याप्त है जो (कविः) सर्वत्र (मनीषी) सब जीवों के मनों की वृत्तियों को जानने वाला (परिभूः) दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला और वियोग से मृत्यु, माता-पिता गर्भाधान जन्म, वृद्धि और मरण नहीं होता वह परमात्मा (शाश्वतीभ्यः) सनातन अनादि रूप, अपने-अपने स्वरूप से उत्पत्ति और मृत्यु रहित (समाभ्यः) प्रजाओं के लिए (याथातथ्यात्) यथार्थ भाव से (अर्थात्) वेद द्वारा सब पदार्थों को (व्यदधात्) विशेष कर बनाता है वही ईश्वर तुम लोगों का उपासनीय है।

भावार्थ-इस मंत्र में ईश्वर के नाना गुणों का वर्णन संक्षेप में किया गया है और उसे ही उपासनीय माना गया है।

अब हम परमात्मा के विषय में ऋग्वेद के आधार पर विचार करते हैं।

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा।

त्वं यज्ञष्वोड्यः।। ऋ. 8.11.1

अर्थ-(अग्ने) हे अग्नि स्वरूप प्रभो। (देव, त्वम्) सर्वत्र प्रकाश करते हुए आप (मर्त्येषु, आ) सबसे मध्य में (व्रतपा, असि) कर्मों के रक्षक हैं। इससे (त्वम्) आप (यज्ञेषु) यज्ञों में (आ ईड्यः) प्रथम उस की ही स्तुति की जाती है।

भावार्थ-परमात्मा सर्वव्यापक और सर्वरक्षक है इसलिए यज्ञों में सर्व प्रथम उसी की स्तुति की जाती है।

अस्तभ्नाद् द्यामसुरा विश्ववेदा अभिभीतवरिमाणं पृथिव्या।

आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरूणस्य व्रतानिः।। ऋ 8.42.1

अर्थ-(असुरः) सबका प्राणदाता (विश्ववेदा) सर्व धन एवं सर्व ज्ञान सम्पन्न वरूण वाच्य जगदीश्वर। (द्याम्) पृथ्वी के ऊपर समस्त सृष्टि को (अस्तभ्नाद्) स्तम्भ के समान पकड़े हुए विद्यमान है। पुनः (पृथिव्याः वरि परिमाणम्) पृथ्वी के परिमाण का (अभिभीत) जो निर्माण करता है। और जो (विश्वा भुवनानि) सम्पूर्ण भुवनों को बनाकर (आसीवत्) उन पर नियंत्रण रखना है। (सम्राड्) वही सबका शासक है। हे मनुष्यों। (वरूणस्य) वरणीय परमात्मा के (व्रतानि) कर्म (तानि) वे ये (विश्वा इत्) सब ही है।

भावार्थ-वरूण परमात्मा सर्व धन और सर्व ज्ञान सम्पन्न है। उसी ने ब्रह्माण्ड की रचना की है और इसको थामें हुए है। वह सम्पूर्ण सृष्टि का एक मात्र शासक है। परमात्मा स्वयं प्रकाश स्वरूप है और सूर्य-चन्द्र में भी उसी का प्रकाश है। वह सर्व उत्पादक और गति प्रदाता है।

उत्ते बृहन्नो अर्चयः समीधानस्य दीदिव।

अग्ने शुक्रास ईरते।।

ऋ. 8.44.4

अर्थ-(दीदिवः) हे सकल जगत् को अपने तेज से प्रदीप्त करने वाले (अग्ने) अग्नि स्वरूप परमात्मा। (समिधानस्य) सम्यक् सर्वत्र

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

जातिवाद के जहर से बचने के लिए वर्णव्यवस्था के अनुसार समाज को चलाएं

वेदों के अनुसार समाज और राष्ट्र को सुसंगत और सुव्यवस्थित करने के लिए मनुष्यों को गुण, कर्म, स्वभाव भेद से चार प्रकार के कार्यों , जिन्हें वर्ण कहा गया है, उन चारों में से किसी एक को अपनाने के लिए प्रेरित किया गया है। ये चार प्रकार के वर्ण हैं-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। ये चार वर्ण जन्म से नहीं, किन्तु कर्म की प्रधानता से माने गए हैं। कर्म की व्यवस्था मनुष्य की योग्यता और सामर्थ्य के अनुसार निर्धारित की गई है। प्रत्येक व्यक्ति के लिए स्वतन्त्रता है कि किस वर्ण को पसन्द करता है और उसको क्या वह अच्छी प्रकार से निर्वाह कर सकेगा? परन्तु खेद है कि मध्य काल में जब से यह जन्ममूलक वर्ण-व्यवस्था आरम्भ हुई है, तब से समाज में अनेक विकृत्तियाँ, जैसे पारस्परिक भेद-भाव, ऊँच-नीच का भाव, छुआ-छूत का भेद, घृणा, विद्वेष, संघर्ष आदि ने जन्म लिया और एक आर्य जाति में फूट प्रारम्भ हो गई। परिणामस्वरूप उससे टूटकर अनेक तथाकथित जन्ममूलक वर्ण के लोग विधर्मी हो गए और इस्लाम या ईसाई मत ग्रहण कर मुसलमान या ईसाई बन गए। इसका परिणाम यह हुआ कि हमारा विशाल देश भारत हजारों वर्षों तक विदेशियों के शासन कुचक्र में दासता का जीवन जीने के लिए मजबूर हो गया। सोने की चिड़िया कहलाने वाला भारतवर्ष विनाश और पतन के कगार पर खड़ा होकर अनेक टुकडों में बंट गया। जिस देश की गौरव गाथा चारों दिशाओं में गुंजायमान थी, वही विदेशियों का गुलाम हो गया। इन अत्याचारों के परिणामस्वरूप ईश्वरकृपा से देश में नवजागरण काल का उदय हुआ और उसमें अगणित बलिदानियों के त्याग से भौगोलिक दृष्टि से खण्डित भारत स्वतन्त्र हुआ परन्तु अब भी जन्ममूलक इस वर्ण-व्यवस्था का विघटनकारी रोग समाप्त नहीं हुआ है। यद्यपि अनेक महापुरूषों ने इस रोग को दूर करने का प्रयास किया तथापि यह समाप्त होने का नाम नहीं ले रहा है। इसका निराकरण तो तभी सम्भव है, जबकि व्यक्ति की रूचि, गुण, कर्म की योग्यता और श्रेष्ठ धार्मिक विद्वानों एवं गुरूकुलों के आचार्यों की सहमति तथा संस्तुति के आधार पर वर्ण का निर्धारण हो। **नान्यः पन्था विद्यते अयनाय** यही वैदिक व्यवस्था है।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था विज्ञानयुक्त, स्वाभाविक और पारस्परिक भेदभाव से रहित है, जैसा कि वेद में कहा गया है-

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत।।

यह मन्त्र ऋग्वेद और यजुर्वेद के पुरूष सूक्त का मन्त्र है। इसमें समाज के चार प्रमुख अंगों की मनुष्य शरीर के अंगों से उपमा दी गई है। जैसे मनुष्य शरीर में सब से उच्च और प्रधान अंग मुख अर्थात् सिर या मस्तिष्क ज्ञान का भण्ड़ार है, उसी प्रकार समाज में सिर के समान ज्ञान प्रधान मनुष्य या मनुष्य समुदाय ब्राह्मण नाम के वर्ण से सम्बोधित किया जाना चाहिए। इसी प्रकार शरीर में दोनों भुजाएं जैसे बल प्रधान होने पर रक्षा करने योग्य की रक्षा करने और दण्डित करने योग्य को दण्डित करने में समर्थ मानी जाती हैं, उसी प्रकार समाज में सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए और शासन के विधि-नियमों के अनुसार सेना, पुलिस और पक्षपात रहित न्याय के द्वारा प्रशासन करने वाला द्वितीय वर्ण क्षत्रिय नाम से सम्बोधित किए जाने योग्य है। तीसरा शरीर का मध्य भाग जैसे उदर, खाए हुए अन्न को रस, रक्त, मांस, अस्थि इत्यादि सात प्रकार के धातुओं में विभक्त करने का कार्य करता है, उसी प्रकार समाज का तीसरा अंग वाणिज्य-व्यापार प्रधान होने से वैश्य कहा जाता है। वैश्य के कर्त्तव्य कर्मों में कृषि तथा गाय, घोड़ा, बकरी, भेड़ आदि पशुओं का पालन भी समाविष्ट है। शरीर का चतुर्थ अंग पैर है, जो शरीर के तीनों अंगों-सिर, भुजाऐं और उदर-कमर जंघा आदि को थामे रहता है, तथा चलने का कार्य करता है। उसी प्रकार समाज में जो लोग न ज्ञान और विशेष बुद्धि का कार्य कर सकते है, न बल सम्बन्धी कार्य कर सकते हैं और न वाणिज्य व्यापार अथवा कृषि गोपालन का कार्य ही कर सकते हैं। वे उक्त तीनों वर्णों की सेवा और शारीरिक परिश्रम का कार्य करने के कारण शूद्र वर्ण के नाम से सम्बोधित किए गए हैं। इन चारों वर्णों के गुण, कर्मों का विस्तृत विधान वेदादि साहित्य से लेकर मनुस्मृति, धर्मसूत्रों, गृह्यसूत्रों, भगवद्गीता आदि में देखा जा सकता है।

ये चारों वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र वर्ण हैं, जाति नहीं। वर्ण का अर्थ है वरण करने योग्य, स्वीकार करने योग्य। कार्यविशेष को करने की प्रबल इच्छा और उसके लिए योग्यता का होना वर्ण अपनाने का हेतु माना गया है। जैसे शरीर के चारों अंग आपस में मिलजुल कर एक होकर कार्य करते हैं, और पूरे शरीर को सुख पहुँचाते हैं, उसी प्रकार समाज के ये चारों वर्ण- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र आपस में मिलजुल कर सम्पूर्ण समाज में एकता बनाए रखते हुए समाज को सुखी और प्रसन्न करते हैं। मनुष्य रूप में एक समान होने और ब्राह्मणादि चारों वर्णों के परस्पर के कार्यों में कुछ-कुछ भेद होने पर भी परस्पर संघर्ष नहीं होना चाहिए। यह वर्णव्यवस्था वैदिक पद्धति पर आधारित होने के कारण शुद्ध है। शूद्र वर्ण का व्यक्ति अगर अपने अन्दर योग्यता पैदा कर लेता है तो वह अपना वर्ण परिवर्तन करके ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य कहलाने का अधिकारी हो जाता है। इसलिए यह वर्ण व्यवस्था जन्मना नहीं कर्मणा आधारित है। यदि ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति का बालक अपने अन्दर विद्या के द्वारा योग्यता को प्राप्त नहीं करता है तो वह भी शूद्र कहला सकता है। इसी प्रकार वैदिक वर्ण व्यवस्था में जिस -जिस वर्ण की योग्यता व्यक्ति के अन्दर होती है वह उसी वर्ण के अनुसार कहलाने का अधिकारी है। कोई भी वर्ण अपने कर्म के आधार पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य बन सकता है। इन तीनों कर्मों से हीन व्यक्ति शूद्र है।

वैदिक धर्म में चार वर्णों के साथ-साथ ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास नामक चार आश्रमों का विधान भी वेदसम्मत है। सौ वर्ष की औसत आयु को पच्चीस-पच्चीस वर्षों में विभाजित करके इस आश्रम व्यवस्था को अपनाने का निर्देश है। इनमें गृहस्थाश्रम को छोड़कर अन्य तीन आश्रमों में ब्रह्मचर्य आश्रम जो मुख्यतः वेद विद्याध्ययन और यम-नियमादि योग के अंगों को दृढ़ता से पालन करने की शिक्षा ही मुख्य है, जो एक स्वस्थ नीरोग और दीर्घ जीवन के साथ-साथ परमार्थ की सिद्धि का मूल माना गया है। गृहस्थाश्रम में युवावस्था में स्त्री पुरूष का विवाह, धर्मानुसार सन्तानों की उत्पत्ति, उनका पालन, शिक्षा दीक्षा, दया दानादि अनेक शुभ कर्मों को करने का शास्त्रों में विधान है। गृहस्थ के पश्चात वानप्रस्थ और सन्यास आश्रम में स्वाध्याय करते हुए, वेदाध्ययन करते हुए, त्याग और तपस्या का जीवन बिताते हुए समाज का उपकार करने का शास्त्रों में वर्णन किया गया है।

जब तक समाज में कर्म पर आधारित वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था का प्रचलन था तब तक समाज इस जातिवाद के जहर से कोसों दूर था। भारतवर्ष के पतन का कारण अनेक जातियों में विभक्त हो जाना था। वर्तमान में भी अगर राष्ट्र को उन्नति के पथ पर ले जाना है तो इस जातिवाद को खत्म करना होगा। राजनीतिक दल चुनावों में वोट प्राप्त करने के लिए जाति के आधार पर लोगों को बांटने का कार्य करते हैं जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्र उन्नति के स्थान पर अवनति की ओर अग्रसर हो जाता है। इसीलिए आज आवश्यकता है कि वेद आधारित वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज को उन्नत एवं खुशहाल बनाएं और इस जातिवाद के भयंकर जहर से राष्ट्र को बचाएं।

प्रेम भारद्वाज
संपादक एवं सभा महामन्त्री

''यज्ञोपवीत गायत्री और शुद्धि का मूल्य''

ले.-डॉ. रामफल सिंह आर्य, C-18 आनन्द बिहार उत्तम नगर नई दिल्ली

(गतांक से आगे)

यज्ञोपवीत और राज्याभिषेक पर पधारे लोगों के ठहरने के लिये बड़े-बड़े भवन और सभागार तैयार करवाये गये। इस सभागारों में हजारों व्यक्तियों के बैठने की व्यवस्था थी। इन पर लगभग 5 करोड़ का व्यय हुआ।

यज्ञोपवीत से चार महीने पहले का समय शिवाजी की शुद्धि में व्यतीत हुआ। अन्त में सब कुछ निश्चित होने पर प्रभाकर राव महोपाध्याय के पुत्र बलभभट्ट के निरीक्षण में कई दिन तक महादेव, भवानी आदि की उपासना भी की गई। फिर 28 मई के दिन गागाभट्ट ने इनका उपनयन संस्कार करवाया। उन्हें इसके लिये 35,000/- रु दक्षिणा दी गई। उस दिन एक लाख ब्राह्मणों को भोजन करवाया गया और सबको एक-एक रूपया भी दिया गया। यज्ञोपवीत संस्कार के अगले दिन पाप निवृति के लिये शिवाजी से तुलादान करवाया गया। तराजू के एक पलड़े में शिवाजी को बैठाया गया और दूसरे पलड़े में सोना, चांदी, तांबा, पीतल, सीसा, जस्त, लोहा (सप्त धातु) सन, लवण, लौंग, इलायची, पान, सुपारी, घी, शक्कर फल, मेवा, मिठाई इत्यादि बारी-बारी तोल कर गरीबों में बांटा गया। इस तुलादान पर लगभग दस लाख रूपया खर्च हुआ। तुलादान होने के पश्चात् ब्राह्मणों ने फिर कहा कि सूरत पर चढ़ाई करते समय आपसे और आपकी सेना से कितने ही मनुष्यों की हत्या हो गई थी उसका प्रायश्चित कीजिये। इसके लिये कोंकण और महाराष्ट्र के ब्राह्मणों को 18,000/- रु. दान दिलवाया गया। उनके यज्ञोपवीत के इस अवसर पर 61,000 ब्राह्मण और हजारों दर्शक चार महीने तक खूब हलवा, खीर, पूड़ी उड़ाते रहे। इस सारे खर्च का विवरण पढ़कर आप चौंक पड़ेंगे। यह भी स्मरण रहें कि यह खर्च सन् 1674 ई. में किया गया था, आज के समय में उसका मूल्य क्या होगा इसका अनुमान आप स्वयं कर लीजिये।

गागाभट्ट को बुलाने का मार्ग व्यय 10,000 रु.

गागाभट्ट के स्वागत पर शिवाजी द्वारा किया गया व्यय 5000 रु.

ब्राह्मणों का मार्ग व्यय 9,21,000 रु.

सेवता ब्राह्मणों का भोजन का खर्च 7,66,75,000 रु.

सभागार तथा भवनों पर व्यय 50,00,000. रु.

गागाभट्ट की दक्षिणा 35,000 रु.

अन्य ब्राह्मणों की दक्षिणा 4,015,000 रु.

संस्कार के दिन भोजन और दक्षिणा 60,000 रु.

तुलादान पर व्यय 10,00,000 रु.

सूरत हिंसा का प्रायाश्चित् 18,000 रु.

कुल व्यय 13,87,71,000

(यह विवरण नन्द कुमार देव शर्मा कृत 'श्री शिवाजी' तथा History of the Maratha People लेखक सी.एन. किनकेर और राव बहादुर दत्तात्रेय की पुस्तक के आधार पर दिया गया है)

लो देखा पाठकगण! इतना ही नहीं, इतने सारे ताम झाम के उपरान्त भी उन्हें गायत्री का उपदेश नहीं दिया गया। क्योंकि यह सारी ब्राह्मण मण्डली जो कि वहां पर पड़े-पड़े मुफ्त का माल डकारती रही और लाखों रूपये की दक्षिणा को भी पचा गई, अन्त तक शिवाजी को शूद्र ही मानती रही। शिवाजी से यह सारा प्रबन्ध इसलिये भी हो सका कि वह धर्म के प्रति निष्ठावान और ईश्वर के मानने वाले थे। इसीलिये तो स्वयं राजा होते हुए भी वे ब्राह्मणों के सामने नतमस्तक बने रहे। मुसलमानों ने जिन ब्राह्मणों के गले से यज्ञोपवीत के साथ-साथ उनकी गर्दनें भी उतारकर फैंक दी थी उनको रोकने के लिये जो व्यक्ति जीवन भर लड़ता रहा, जब उसको ब्राह्मणों की आवश्यकता पड़ी तो उनका व्यवहार उनकी वृति वही रही। ठगने, मुफ्त का माल उड़ाने की। काश! शिवा जी के समय कोई महर्षि के समान विद्वान और तेजस्वी व्यक्ति होता। यह धन जो इस संस्कार पर व्यय हुआ यही राष्ट्रोत्थान में लगता और एक सुदृढ़ सेवा तैयार हो जाती। इस भयानक व्यय ने ही आगे चलकर महाराष्ट्र की शासन व्यवस्था में बहुत बड़ी बाधा उत्पन्न की और धन के अभाव में कई कष्ट उठाने पड़े।

महर्षि दयानन्द और आर्य विद्वानों की तपस्या के फलस्वरूप आज यज्ञोपवीत और गायत्री आपके लिये एक अति सरलता से उपलब्ध हो जाने वाली वस्तु हो गई जिसके लिये आपको कोई व्यय करने की आवश्यकता न रही। परन्तु शोक! महाशोक!! जिस कार्य के लिये हमारे पूर्वजों को इतना बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा, आर्य समाज को भी संघर्ष करना पड़ा उन्हीं पावन चिन्हों को हम लोगों ने स्वेच्छता से त्याग दिया। साधारण सदस्यों की क्या बात करें समाजों और समाजों के प्रधानों के गले भी यज्ञोपवीत से शून्य मिल जायेंगे। मैं एक स्थान पर यज्ञोपवीत के महत्त्व पर बोल रहा था तो अपने स्वभावावश पूछ लिया कि किन-किन लोगों ने इसे नहीं पहना हुआ है वे कृपया हाथ खड़े करें। उस समय समाज के प्रधान जी ने सहर्ष सबसे पहले अपना हाथ उठाया। यह केवल एक स्थान की बात नहीं अपितु अनेक स्थानों की स्थिति मिल जायेंगी। सिर पर चोटी रखने में हमें लाज आने लगी, यज्ञोपवीत में श्रद्धा नहीं है, गायत्री मन्त्र का अर्थ नहीं आता। लेकिन अनेक लोग ऐसे मिल जायेंगे जिनके गले में 'या बाजू में' कोई गण्डा, डोरी या ताबीज बंधा हुआ मिल जायेगा। उस पर बहुत विश्वास और श्रद्धा है।

कैसा रहा यह आपने देख लिया। यह है यज्ञोपवीत, गायत्री और शुद्धि का मूल्य। आंकलन करके विचार कीजिये।

अब हम आपको इस चित्र का दूसरा पत्र दिखलाते हैं। समाज की जो अवस्था शिवाजी महाराज के समय में थी वह उन्नीसवीं सदी तक आते-आते और भी विकृत हो चुकी थी, क्योंकि उस समय शिवाजी जैसा कोई दृढ़ व्यक्ति नहीं रहा जिसने अत्याचार और अन्याय के विरूद्ध इतना बड़ा पग उठाया हो। शिवाजी को ही अपना यज्ञोपवीत संस्कार करवाने के लिये इतना परिश्रम और खर्च करना पड़ा तो साधारण व्यक्ति की तो बात ही पूछने वाला कोई न था। ऐसी विषम परिस्थिति में, ऐसे पोंगा पन्थी के समय में महर्षि दयानन्द जी ने गायत्री और यज्ञोपवीत के मार्ग राजाओं के लिये नहीं, अपितु अति साधारण मनुष्यों के लिये खोल दिये और बदले में एक पैसा भी किसी से न लिया। तनिक विचार तो कीजियें कि महर्षि की यह कृपा कितनी बड़ी है और इसके लिये उन्होंने कितने विरोध, अपमान और कष्टों को सहन किया परन्तु उसकी आंच अपने लोगों तक तनिक भी न आने दी। यह केवल उनके योगबल, बुद्धिबल, विद्याबल, तर्कणा शक्ति और परोपकार की प्रबल भावना का ही फल या, अन्यथा कोई सोच भी नहीं सकता था कि इतनी सरलता से यह महान् संकट हट जायेगा। यद्यपि हम इस बात को भी स्वीकार करते हैं कि शिवजी महाराज ने अपने राजतिलक के लिये जो आयोजन किया था, वह उनका व्यक्तिगत विषय था तथापि ब्राह्मणों ने जिस प्रकार से उनका शोषण किया और इस क्रिया को एक आडम्बरपूर्ण और पेचीदा बनाकर करोड़ों रूपयों का व्यय इस पर करवाया, उससे भी इन्कार नहीं किया जा सकता।

यज्ञोपवीत की, यज्ञ की, वेद ज्ञान की, योग की, उपासना की यह विधि और परम्परा ऋषियों के बड़े त्याग और तपस्या से हम लोगों तक पहुंची है, हमें उनके प्रति कृतज्ञ और श्रद्धावान् होना चाहिये। निष्ठापूर्वक अपने जीवन में इन्हें स्थान देना चाहिये। उच्च आदर्शों का मूल्य तभी होता है जबकि हम अपने आचरण में उन्हें लेकर आते हैं। कई लोग यह प्रश्न किया करते हैं कि जिन्होंने यज्ञोपवीत धारण कर रखे हैं 'क्या वे सभी कार्य ठीक करते हैं? इसका उत्तर हम पहले ही उपरोक्त पंक्तियों में लिख चुके हैं कि हम आचरण की बात करते हैं, पाखण्ड की नहीं। यज्ञोपवीत धारण करके भी जिनके कर्म अच्छे नहीं हैं, वे न तो यज्ञोपवीत का ही मर्म जान पाये हैं और न ही उनकी ऋषियों के प्रति श्रद्धा है। यज्ञोपवीत धारण ही इसलिये किया जाता है कि हमें श्रेष्ठ मार्ग पर चलना है उत्थान के मार्ग पर चलना है। यह एक प्रतिज्ञा के रूप में कन्धे पर डाला जाता है जिससे कि हमें सदैव इस बात का स्मरण होता रहे। प्रात: सायं दोनों समय आत्म निरीक्षण करें कि आज हमसे व्यवहार में कोई भूल तो नहीं हुई? यदि हुई है तो उसे ठीक करें। सावधान रहने का अभ्यास बनायें। निरन्तर चिन्तन से सब रहस्य समझ में आने लगते हैं और बुद्धि का विकास होता है।

मनुष्य जीवन का कल्याण वेदज्ञान से ही संभव

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून

परमात्मा ने हमें मनुष्य जीवन दिया है। हमारा सौभाग्य है कि हम भारत में जन्में हैं जो सृष्टि के आरम्भ से वेद, ऋषियों व देवों की भूमि रही है। मानव सभ्यता का आरम्भ इस देवभूमि आर्यावर्त वा भारत से ही हुआ था। मनुष्य जीवन की उन्नति व कल्याण के लिए परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों को चार वेदों ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद का ज्ञान दिया था। यह वेदज्ञान मनुष्य की समग्र वा सर्वांगीण उन्नति का आधार है। बिना वेदज्ञान के मनुष्य अपनी आत्मा व जीवन की उन्नति नहीं कर सकता।

वेदों का कुछ कुछ ज्ञान परवर्ती व वर्तमान साहित्य में यत्र तत्र भी सुलभ होता है परन्तु शुद्ध वेदज्ञान वेदों व ऋषियों के ग्रन्थों यथा उपनिषद, दर्शन, मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि-भाष्यभूमिका, आर्याभिविनय आदि से ही प्राप्त होता है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिये हमें संस्कृत या हिन्दी भाषा का ज्ञान होना आवश्यक है। इन दोनों व इनमें से किसी एक भाषा का ज्ञान होने पर हम इन ग्रन्थों का स्वाध्याय कर तथा वैदिक विद्वानों की संगति कर अपनी आत्मा को वेदज्ञान से युक्त कर सकते हैं और इसके अनुरूप आचरण से हम अपने जीवन के उद्देश्य दुःख निवृत्ति, सुखों की प्राप्ति, अभ्युदय, निःश्रेयस सहित ईश्वर साक्षात्कार आदि भी कर सकते हैं। ऐसा ही प्राचीन काल में सभी विज्ञजन किया करते थे। इसी कारण भारत विश्वगुरु कहलाता था। विश्व के लोग भारत में वेदज्ञान के अध्ययन व प्राप्ति के लिये आते थे और यहां रहकर ऋषियों से ज्ञान की प्राप्ति करके अपने देशों में जाकर वेदों का ही अध्यापन व प्रचार करते थे। अध्ययन से हम यह भी पाते हैं कि महाभारत के समय तक पूरे विश्व में एक ही वैदिक धर्म प्रचलित था। इसका कारण था वेदों के अज्ञान से सर्वथा रहित होना तथा पूर्णरुपेण ज्ञान का विज्ञान पर आधारित होना जिससे मनुष्य को सुख लाभ होने सहित दुःखों की सर्वथा निवृत्ति होती थी, अब भी होती है तथा परजन्म में सुखों व ज्ञान से युक्त परिवेश में परमात्मा द्वारा मनुष्य जीवन की उपलब्धि होती है।

वेदों का ज्ञान परमात्मा प्रदत्त ज्ञान है। सृष्टि के आरम्भ में और उसके बाद प्रत्येक काल में मनुष्यों को ज्ञान की आवश्यकता होती है। सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा ने युवावस्था में अमैथुनी सृष्टि की थी। ज्ञान प्राप्ति के लिये आदि काल में अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न मनुष्यों के पास अपने माता-पिता व आचार्य आदि नहीं थे। ज्ञानवान सत्ता एक ही थी जो ईश्वर के रूप में संसार में व्यापक होने सहित सबकी आत्माओं में सर्वान्तर्यामी रूप में विद्यमान थी। ईश्वर सच्चिदानन्द-स्वरूप, सर्वज्ञ, निराकार, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा सर्वान्तर्यामी है।

आत्मा एवं परमात्मा दोनों चेतन सत्तायें होने से ज्ञानवान व ज्ञान ग्रहण करने की क्षमता से युक्त होते हैं। जड़ प्रकृति ज्ञान से सर्वथा शून्य होती है। जड़ पदार्थों का मुख्य गुण ज्ञानशून्य वा जड़ होना ही होता है। अतः सृष्टि की आदि में अमैथुनी सृष्टि में सभी स्त्री, पुरुषों को ज्ञान परमात्मा से ही प्राप्त हुआ था।

यह ज्ञान चार वेदों के रूप में था। इसी कारण हम परमात्मा को आदि माता, पिता तथा आचार्य भी मानते हैं और वह है भी। परमात्मा सर्वज्ञ एवं अविद्या से सर्वथा रहित है। ऐसा ही वेदज्ञान है जिसमें सब सत्य विद्यायें विद्यमान हैं और अविद्या व अज्ञान का लेश भी नहीं है। इस तथ्य की पुष्टि ऋषि दयानन्द सहित सभी ऋषि एवं विद्वान करते आये हैं और इसके लिए प्रमाण भी देते हैं। सत्यार्थप्रकाश तथा ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में भी इस विषय पर प्रकाश डाला गया है। वेदोत्पत्ति का वर्णन भी सत्यार्थप्रकाश में हुआ है। इस अध्ययन से निर्भ्रान्त रूप से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेद ज्ञान परमात्मा से प्राप्त हुआ था। वेदों की भाषा संस्कृत भी वेदों से ही प्राप्त हुई है जो संसार की सभी भाषाओं की जननी व मूल भाषा है। वेदों से ही संसार के सब पदार्थ प्रसिद्ध अर्थात् नाम व गुणों के द्वारा प्रकाश में आये हैं। इस कारण वेद मनुष्यमात्र की ईश्वर प्रदत्त सम्पत्ति है। सब मनुष्यों का वेदों पर समान अधिकार है। कोई किसी भी देश में किसी भी वर्ण, जाति व परिस्थिति में उत्पन्न हुआ हो, सब वेद पढ़ सकते हैं। परमात्मा ने यजुर्वेद के 26/2 मन्त्र में संसार के सभी मनुष्यों को वेद पढ़कर ज्ञानी बनने का अवसर व अधिकार दिया है। सब मनुष्यों का पावन पुनीत कर्तव्य भी है कि वह वेदों को पढ़े और उसकी उदात्त शिक्षाओं को ग्रहण कर उसके अनुसार न केवल अपना जीवन बनायें अपितु अज्ञानी लोगों में प्रचार कर वेदों का प्रकाश करें जिससे हमारा देश व समाज अज्ञान तिमिर से दूर होकर सत्य ज्ञान पर आधारित एक अग्रणीय उन्नत व विकसित समाज बन सके। यहां यह बताना भी आवश्यक है कि जो मनुष्य जीवन में वेदाध्ययन नहीं करता व उसका आचरण नहीं करता वह ईश्वर की आज्ञा पालन न करने का दोषी होता है। इसी को ध्यान में रखकर ऋषि दयानन्द ने नियम दिया है कि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना तथा सुनना-सुनाना सब आर्यों अर्थात् श्रेष्ठ गुणों वाले मनुष्यों का परम धर्म है। जो मनुष्य परमधर्म की अवज्ञा करेगा वह निश्चय ही दुःखों को प्राप्त होगा।

वेदों में हमें ईश्वर, जीवात्मा तथा कारण व कार्य सृष्टि का सत्यस्वरूप प्राप्त होता है। वेदों से हम ईश्वर की महानता से परिचित होते हैं और हमें जीवात्माओं की अल्पज्ञता एवं इसके कारण उसमें लोभ, मोह, काम, क्रोध आदि दुर्गुणों के होने का ज्ञान भी होता है। जीवों की इन दुर्बलताओं का शमन वेदाध्ययन एवं वेद की शिक्षाओं को आत्मसात कर उसे आचरण में लाने से ही होता है। मनुष्य जीवन की उन्नति में ईश्वर के ज्ञान एवं ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना सहित वैदिक ग्रन्थों के स्वाध्याय का महत्व निर्विवाद है। वेद के ज्ञान व उसके आचरण से दूर मनुष्य को पतन के गर्त में गिरता देखा जाता है। संसार में जो लोग व देश अकारण हिंसा, शोषण व अन्याय आदि करते देखे जाते हैं, उसका कारण उनका वेदज्ञान से दूर होना ही होता है। यही कारण था कि प्राचीन काल में राजा व उनके मन्त्री एवं परामर्शदाता वेदों के विद्वान होते थे जो स्वयं वेदमार्ग पर चलते हुए राजाओं को वेदमार्ग पर चलने की प्रेरणा करते थे।

इसके साथ ही राजाओं के सभी निर्णय ईश्वर को सर्वव्यापक एवं साक्षी मानकर मानवता के हितों अनुरूप लिये जाते थे। राम, कृष्ण एवं आर्य राजाओं का जीवन ऐसा ही होता था। ऐसी स्थिति होने पर ही सभी परस्पर देश सुख व शान्ति से रहते थे और यहां के मनुष्यों का जीवन भी सुख व आनन्द से युक्त होता था। जैसे जैसे संसार वेदों से दूर जाता गया, संसार में अज्ञान की वृद्धि होकर परस्पर संघर्ष की स्थिति बनती गई और लोभवश शक्तिशाली राजा दूसरे धार्मिक व निर्बल राज्यों पर अधिकार करते रहे। वेदों का राजधर्म धार्मिक राजाओं पर सीमाओं के विस्तार की दृष्टि से आक्रमण की आज्ञा नहीं देता अपितु सभी देशों से मैत्री की संधि कर सबके हित के लिए सहयोग करने की शिक्षा व प्रेरणा करता है। हमारे देश के चक्रवर्ती आर्य राजा पड़ोसी व दूसरे देशों पर आक्रमण कर अपने देश में मिलाने के स्थान पर वहां वैदिक व्यवस्था कायम कर उनसे नाममात्र का कर वसूल करते थे और उनकी रक्षा का आश्वासन देते थे। यही कारण है कि वैदिक राज्य व व्यवस्था रामराज्य का पर्याय कहलाती है। इस संसार का पूर्ण हित भी तभी होगा जब लोग वेदों को जानेंगे और वेद की शिक्षाओं के आधार पर देश की सभी व्यवस्थाओं का संचालन होगा।

वेदज्ञान को प्राप्त कर हम सत्य ज्ञान को प्राप्त होते हैं। वेदज्ञान से सभी मनुष्यों को अपने अपने कर्तव्यों का बोध होता है। कर्तव्यों का बोध और उनका पालन करने से ही हम धर्मयुक्त आचरण करते हुए अपने व दूसरों के जीवनों को अभ्युदय तथा निःश्रेयस के मार्ग पर अग्रसर करने की प्रेरणा कर सकते हैं। धर्म की एक परिभाषा है कि धर्म उन कर्मों व कर्तव्यों का नाम है जिससे मनुष्य का अभ्युदय होता हो मृत्यु होने पर निःश्रेयस अर्थात् जन्म व मरण से अवकाश होता है। इसे ही मुक्ति व मोक्ष कहा जाता है। मोक्ष की अवस्था जन्म व मरण से रहित पूर्ण आनन्द की अवस्था होती है जो जीव को ईश्वर के सान्निध्य में रहकर प्राप्त होता है। इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये सभी मनुष्यों को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन सहित वेदाध्ययन करना भी आवश्यक होना चाहिये। वैदिक जीवन ही सुखी एवं धर्मपूर्वक समृद्धि का आधार होता है। वैदिक जीवन में ज्ञान प्राप्ति सहित जीवन को यम व नियमों (अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर-प्रणिधान) पर आधारित बनाने पर बल दिया जाता है। यम व नियमों में बंधा जीवन ही सुखी, निरोग, स्वस्थ, उन्नत, दीर्घजीवी एवं देश एवं समाज के लिए हितकारी होता है।

अतः सबको वेदाध्ययन सहित वेदों के प्रवेशद्वार सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिये। ऐसा करके हम अपने जीवन को दिव्य एवं सार्थक बना सकेंगे और हमारा इहलोक व परलोक सुधरेगा। हम सबको धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति होगी।

गायत्री विवेचन

ले.-डा. सुशील वर्मा, मास्टर मूल चन्द वर्मा गली फाजिल्का

भारतीय जनमानस में गायत्री मन्त्र महामन्त्र के रूप में प्रचलित है। इस मन्त्र का जप ओंकार पूर्वक एवं भू:, भुव: इन तीन महाव्याहृतियों सहित करने का विधान है। मनु महाराज का कथन है कि विप्र दोनों सन्ध्याकालों में इस मन्त्र का जाप करता है उसे वेद पढ़ने का पुण्य प्राप्त हो जाता है। वे यह भी लिखते हैं कि वह परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। प्रचलित गायत्री मन्त्र का रूप यह है-ओ३म् भूर्भुव: स्व:। तत सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो न प्रचोदयात्।।

ऋग् 3/62/10, यजु 3/35, 22/9, 30/2, 36/3, साम 1462

सभी स्थानों में यह 'तत्सवितुर्वरेण्यम् से प्रारम्भ होता है। केवल यजुर्वेद के 36वें अध्याय के तीसरे मन्त्र में व्याहृतियों के साथ है जो कि प्रचलित स्वरूप है। व्याहृतियाँ अर्थात् विशेषण इसे सुशोभित कर रहे हैं। वैसे तो भू: भुव: स्व: के शाब्दिक अर्थ एवं प्रतीकात्मक रूप में 10-11 अर्थ मिलते हैं

1. उत्पादक प्रभु, दु:खहर्त्ता प्रभु, सुखदाता प्रभु 2. सत्, चित्त, आनन्द, 3. पृथिवी लोक, अन्तरिक्ष लोक, द्युलोक 4. प्राण, अपान, व्यान 5. ऋक्, यजु: साम 6. ज्ञान, कर्म, उपासना आदि। प्रसंगानुसार इन्हें प्रयोग में लाया जाता है।

गायत्री के तीन नाम प्रसिद्ध है-गायत्री ऋचा, सावित्री ऋचा एवं गुरु मन्त्र। गायत्री नाम का प्रथम कारण गायत्री छन्द में निबद्ध है। अक्षरों की गिनती के अनुसार छन्दों के नाम गायत्री (24 अक्षर) उष्णिक-28 अनुष्टुप 32, बृहती 36, पंक्ति 40, त्रिष्टुप 44, जगती 48

गायत्री छन्द में तीन पाद है और प्रत्येक पाद में आठ-आठ अक्षर है अर्थात् कुल 24 अक्षर। गायत्री छन्द के बहुत से मन्त्र है परन्तु प्रस्तुत गायत्री मन्त्र में 23 अक्षर है अर्थात् एक (प्रथम पद) पद में 7 और अन्य दो में 8-8 अक्षर। इसलिए इसी छन्द को निचृद् गायत्री कहते हैं।

गायत्री का पहला नाम छन्द के कारण है दूसरा गायत्री नाम का कारण गानार्थक है क्यों यह 'गै' धातु से निष्पक्ष है। साधक तेज की प्राप्ति के लिए गान करता है। तीसरा नाम 'गय' के कारण है। गय नाम प्राणों का है। शरीर के 'गय' अर्थात् प्राणों का त्राण (रक्षा) करते है। इसलिए गायत्री के उच्चारण से प्राणों की रक्षा होती है।

उच्च ऋचा का नाम सावित्री है। इसका कारण है देवता सविता। ज्ञातव्य है कि प्रत्येक मन्त्र के साथ ऋषि, देवता, छन्द और स्वर अंकित होता है। ऋषि का अर्थ यह नहीं कि उस ऋषि ने इसे लिखा है। वेद मन्त्र तो ईश्वर प्रदत्त है, ऋषियों ने इन मन्त्रों का साक्षात्कार किया। ''ऋषिर्दर्शनात्'' अर्थात् ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया।

देवता का अर्थ है विषय। किस विषय के सम्बन्ध में यह मन्त्र है? तो वह विषय ही देवता कहलाता है। यहाँ गायत्री मन्त्र का देवता 'सविता' है अर्थात् यह ऋचा सविता विषयक है, अथवा तो सविता के तेज की प्रार्थना है। तीसरे इसका नाम गुरूमन्त्र भी है क्योंकि वेदारम्भ में (विद्यार्थी जब गुरुकुल में शिक्षा ग्रहण के लिए प्रवेश करता है) गुरु इस मन्त्र के द्वारा ही ज्ञान की प्रथम दीक्षा देता है।

क्योंकि मन्त्र का देवता 'सविता' है। प्रकृति में सूर्य का नाम भी सविता है। सूर्य के समान जो परम प्रकाशवान तथा प्रकाश का स्रोत्र है वह परमेश्वर सविता है। दूसरा सविता का अर्थ 'प्रेरक' होता है। प्रेरणार्थक 'षू' धातु से यह शब्द बनता है।

मन्त्र के तीन पाद है। एक एक पद के विषय में चिन्तन करते है। पहला पद है-''तत्सवितुर्वरेण्यम्'' उस सविता प्रभु को हम वरण अर्थात् चुनते है। क्योंकि साधक उस प्रभु की ज्योति से विस्मित हो जाता है। आश्चर्यजनक उस ज्योति का स्वरूप। एक बार दर्शन पा लेने के बाद वह तो लालायित हो उठता है। उपनिष्तकार इस ज्योति की महिमा का गान करते हुए कहते हैं।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं, नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्नि:।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं, तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

कठोपनिषद 5/15, श्वेताश्वतरोपनिषद 5/11

इस प्रकार साधक उस परम सन्ता की दिव्य ज्योति के दर्शन कर उस की स्तुति कर रहा है क्योंकि यह ज्योतिर्मय दर्शन ही उस के लिए वरणीय है। अत: यह पद स्तुति वाचक है।

स्तुति के पश्चात् वह प्रार्थना करता है क्योंकि जिसकी स्तुति करता है वह उससे माँगता है और वह कह उठता है-

''भर्गो देवस्य धीमहि''। ऐसा परम पिता परमात्मा, सविता स्वरूप देव, जिसके पास पूर्ण ऐश्वर्य है (भग:)। वह प्रकाश, दिव्य ज्योति हमारे अन्दर भी स्थित हो जाए। उसके आलोक से हमारा हृदय भी प्रकाशित हो जाए, पूर्णरूपेण जगमगा उठे। ऐसी प्रार्थना उसके लिए स्वाभाविक है क्योंकि उसने अद्वितीय प्रकाश, ज्योति की अनुभूति प्राप्त कर ली है इसलिए अब वह अधीर है।

प्रार्थना के बाद उपासना का क्रम आ जाता है क्योंकि साधक उस का सान्निध्य चाहता है। इस का परिणाम है तीसरा पद ''धियो यो न: प्रचोदयात्''। वैदिक निघण्टु के अनुसार 'घी' शब्द का अर्थ है 'प्रज्ञा' एवं 'कर्म' (घी-कर्म निघण्टु 2/1) घी-प्रज्ञा (निघण्टु 3/9)। जिस प्रकार सूर्य का प्रकाश प्रात: काल सभी प्राणियों को जागृत अवस्था में ले आता है और उन्हें कर्मों में प्रवृत्त कर देता है। उसी प्रकार जैसे फूल कली के रूप में प्रात: सूर्य (सविता) से प्रेरित हो खिलने लगता है, ठीक उसी तरह हमारे हृदय में भी प्रकाशक व प्रेरक सविता का उदय हो जाने पर हमारी बुद्धि उस उजाले से खिल उठेगी। हमारे अज्ञान का अन्धेरा मिट जाएगा ''तमसो मा ज्योतिर्गमय'' साकार हो जाएगा। उसी ज्ञान प्रकाश से हमारा अन्त:करण ज्योतिर्मय हो आलोकित हो उठेगा। वास्तव में देखा जाए तो यह है बुद्धि और उर्ध्वगति की जागृति, जो उस सविता (प्रेरक प्रभु) देव का प्रसाद है। दिव्य प्रकाश से आलोकित होती हुई बुद्धि एवं दिव्य क्रिया। इस प्रकार इस मन्त्र में स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना तीनों ही एक साथ है, शायद ही ऐसा कोई अन्य मन्त्र हो।

जहाँ तक 'ओ३म् भूर्भुव: स्व' का सम्बन्ध है। उसे इस प्रकार समझे। ओ३म् परमात्मा का निज नाम जो कि अ, उ, म् के योग से बना है। 'अ' से सृष्टि उत्पन्ति, 'उ' से सृष्टि का धारण तथा म् से उत्पादित एवं सृष्टि धारित का अन्त अर्थात् संहार से सूचित होता है। इस सन्दर्भ में मनु कहते है कि ये वेदत्रयी से दुहे गए हैं।

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापति।

वेदयान्निरदुहद् भूर्भुव: स्वरितीति च।।

मनु 2/76

अत: यह तीनों वेदों का सार है। भू:, भुव: स्व: से क्रमश: पृथिवी अन्तरिक्ष तथा द्यौ लोक सूचित होते है। जिस प्रकार सविता सूर्य अपनी किरणों के प्रकाश द्वारा तीनों लोकों में पहुँचा हुआ है वैसे ही ओंकार पद वाच्य परमेश्वर भी तीनों लोकों में व्यापक है।

भू: भूव: स्व: से सत् चित आनन्द अर्थात् परमात्मा की सच्चिदानन्द स्वरूपता भी हृदयगम होती है। अत: उस प्रभु के दिव्य तेज को तीनों लोकों में प्रसारित होता देख कर साधक कहता है कि यही वरणीय है। इस का तेज का अंश मुझे भी प्राप्य हो, ऐसी प्रार्थना करता है और उस तेज से मेरी बुद्धि एवं मेरे कर्म आलोकित हो, दिव्यता को प्राप्त है, उत्कृष्ठता की ओर अग्रसर हो।

गायत्री की महिमा के विषय में बृहदारण्यक उपनिषद् (पंचम अध्याय-चौदहवां ब्राह्मण) का कथन है कि गायत्री के तीन पद आठ आठ अक्षर वाले है।

1. ''तत् सवितुर्वरेण्यम्'' में आठ अक्षर है और इसी से सम्बन्धित ''भूमि-अन्तरिक्ष-दिऔ'' में भी आठ अक्षर है। इसलिए गायत्री के प्रथमपद के आठ अक्षर मानो ये तीनों लोक भूमि अन्तरिक्ष दिऔ हैं।

जो इस पद का उच्चारण करता हुआ तीनों लोकों का ध्यान करे वह तीनों लोकों में जितना प्राप्तव्य है, उतना पा जाता है।

2. ऋच: यंजूषि सामानि'' के ये आठ अक्षर ''मर्गो देवस्य द्यौमहि'' के ही आठ अक्षर है मानो। गायत्री के द्वितीय पद के अक्षर मानो त्रयी विद्या है। इस प्रकार जो द्वितीय पर को जानता है वह त्रयी विद्या में जितना प्राप्तव्य है उतना पा जाता है।

3. ''प्राण: अपान: विआन:''-ये आठ अक्षर हैं और गायत्री का तृतीय पद'' धियो यो न: प्रचोदयात्'' में आठ अक्षर हैं। इसलिए गायत्री के तृतीय पद के अक्षर मानो प्राण-अपान-व्यान-ये तीनों प्राण हैं। इस पद का उच्चारण करता हुआ 'तीनों प्राणों का ध्यान करे वह जितना प्राणि समुदाय में प्राप्तव्य है उतना पा जाता है।

4. गायत्री का एक 'तुरीय', 'दर्शत', 'परोरजा' पर भी है। तुरीय अर्थात् चतुर्थ पद, 'दर्शत' अर्थात् जो दीखता है, 'परोरजा' का अर्थ है 'प्रकृति' से परे। यह चतुर्थ पद, जो दीखता है, प्रकृति से परे है विश्व में तप रहा है। जो चतुर्थ पद को, जो दीखता सा है, प्रकृति से परे हो रही तुरीय-रूप प्रभु को देख लेता है, वह यश से तप उठता है, चमक उठता है।

इस प्रकार किसी को तीनों लोकों की प्राप्ति हो जाए वह गायत्री के प्रथम पद पाने के समान है। किसी को त्रयी विद्या की प्राप्ति हो जाए वह गायत्री के द्वितीय पद पाने के समान है यदि किसी को सम्पूर्ण प्राणि जगत की प्राप्ति हो जाए वह गायत्री के तृतीय पद पाने के समान है। और यदि दर्शत, तुरीय, परोरजा पद प्राप्त हो जाए तो उसकी तुलना किसी भौतिक पदार्थ से नहीं की जा सकती।

सारांश यह कि जो उस तुरीय पद को अनुभव कर लेता है वह पद जो दीखता सा है, प्रकृति से परे है वह अद्वितीय है वास्तव में वही अध्यात्म की प्राप्ति है। हम गायत्री का ध्यान करते हुए उस तप की प्राप्ति करें, अध्यात्मिकता को प्राप्त हों तभी गायत्री का अनुष्ठान फलीभूत होगा। ऐसी अनुभूति होते हुए साधक कहता है कि हे प्रभु आपकी उपासना हमें रस प्रदान करे, आनन्द प्राप्त हो, सद्गुण का प्रवाह हो।

नमस्ते अस्तु पश्चत, पश्य या पश्यत।। अथर्व. 3/4/55

हे सर्वदर्शी, आपको नमस्कार हो। हे सर्वदर्शी, मुझ पर दृष्टि ड़ालो।

पृष्ठ 2 का शेष-वेदों में ब्रह्म का स्वरूप एवं कार्य

प्रकाशित (ते) तेरी (बृहन्तः) महान् और (शुक्रासः) शुचि (अर्चयः) सूर्यादिरूप दीप्तियां (उदीरते) अधिकाधिक है और अपने तेज से सभी को प्रकाशित कर रहा है। उसकी शक्ति से ही सभी वस्तुएं उत्पन्न हो रही है।

सा मा सत्योक्तिः परिपातु विश्वतो द्यावा च यत्र ततनन्नहानि च।

विश्वमन्यं निविशने यदेजति विश्वाहापो विश्वाहादेति सूर्यः।।

ऋ. 10.37.2

अर्थ-(यस्य) जिसके आश्रय में (द्यावा च अहानि च) दिन तथा रात्रियां भी (ततनन्) उपजती है (यद् एजति) जो चल रहा है वह (अन्यत् विश्वम्) जड़ से भिन्न चेतन भी जिसके आश्रय में (निविशते) बसा है और जिसके आश्रय पर (आपः विश्वाहाः) नदी, समुद्र एवं सकल प्रजाएं स्थित है (विश्वाहाः सूर्य उदेति) जिसके आश्रय पर सूर्य निकलता है। (सा सत्योक्तिः) वह सत्य वचन (मा विश्वत् परिपातु) मेरी सब तरह से रक्षा करे।

भावार्थ-जो परमात्मा इस सम्पूर्ण जगत् को चला रहा है। जिसकी वेद वाणी में जड़-चेतन सभी स्थित है, जिसके आश्रय से सम्पूर्ण जगत् गतिशील है वह परमात्मा मेरी रक्षा करे।

ब्रह्म प्रकाशकों का भी प्रकाशक है।

येन सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमो जगच्च विस्वमुदियर्षिभानुना।

तेनास्मद्वि श्वामनिरामनाहुतिम पा मीवामपदुःष्वप्न्य सुव।।

अर्थ-हे (सूर्य) प्रभो। तुम (येन ज्योतिषा तमः बाधसे) जिस तेज से अन्धकार मिटाते हो और (येन भानुना) जिस प्रकाश से (विश्वम् जगत् उत् इयर्षि) सम्पूर्ण संसार को उपजाते हो (तेन) उस (अस्मत्) हमसे (विश्वाम्) सकल (अनिराम्) अन्न-जल के अभाव (अनाहुतिम्) यज्ञादि की न्यूनता (अमीवाम्) रोग व्याधि (दुःस्वप्न्यम्) दुस्वप्न आदि के कारण को (अप सुव) मिटा दे।

भावार्थ-हे प्रभो। आप जिस तेज से अन्धकार का हरण करते हो और जिस प्रकाश से सम्पूर्ण संसार को उत्पन्न करते हो उसी तेज से हमारे अन्न-जल के अभाव और रोग-व्याधि को दूर कर दीजिए।

अग्ने तव श्रवो वयो महि भ्राजन्ते अर्चयो विभावसो।

बृहद्भानोशवसा वाज मुक्थ्यं दधा सि दाशुषे कवे।।

ऋ. 10.140.1

अर्थ-(अग्नेविभावसो) हे सबमें प्रकाशवान् तेजस्वी (तव श्रयः वयः) तुम्हारा यश और बल (अर्चः) कान्तियां (भ्राजन्ते) प्रकाशित हैं (बृहद्भानो कवे) बड़ी-बड़ी किरणों के प्रकाश को रखने वाले, वाणी को गति देने वाले प्रभो। (शवसा) बल से, तेज से (उक्थ्यम् वाजम्) स्तुति योग्य तेज को (दाशुषे) दानी यज्ञ कर्ता जन के लिए (दधासि) धारण करते हो।

अब हम सामवेद के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप पर विचार करते है।

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुत घृतेन।

नरो हव्ये भिरीडते सबाध आग्निरग्रमुषसामशोचि।।साम. 70

अर्थ-(इन्धे) प्रकाशित होता (राजा) तेजस्वी (सम्) सम्यक् (अर्यः) स्वामी (नमोभिः) नमस्कारों के द्वारा (यस्य) जिसका (प्रतीकम्) स्वरूप (आहुतम्) परिपूर्ण है। (घृतेन) प्रकाश से (नरः) मनुष्य (हव्येभिः) त्यागने योग्य पदार्थों के त्याग के द्वारा (इडते) स्तुति करते हैं। (सबाधः) उपासक लोग (आ) भली भांति (अग्निः) परमेश्वर (अग्रम्) पहले (उषसाम्) उषाकाल के (अशोचि) प्रकाश करता है।

भावार्थ-ब्रह्म का स्वरूप तेज से परिपूर्ण है। उपासक लोग त्याग से उसकी स्तुति करते हैं। उषाओं के पहले वही प्रकाश करता है। सभी जन उसी को नमस्कार करते हैं।

ब्रह्म के समान या उससे अधिक दूसरा कोई भी देव नहीं है।

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।।

साम. 681

अर्थ-(न) नहीं (त्वावान्) तेरे समान (अन्यः) दूसरा (दिव्यः) द्युलोक में (न) नहीं (पार्थिवः) पृथ्वी पर (न) नहीं (जनिष्यते) उत्पन्न होगा। (अश्वायन्तः) अश्वों की कामना वाले (मघवन्) हे सभी सम्पदाओं के स्वामी (इन्द्र) परमेश्वर (वाजिनः) बलवान् (गव्यन्तः) गायों की कामना वाले (त्वा) तुझे (हवामहे) पुकारते हैं।

भावार्थ-हे सम्पूर्ण सम्पत्तियों के स्वामी परमेश्वर। तेरे समान द्युलोक में, पृथ्वी पर या अन्तरिक्ष में दूसरा कोई नहीं है। न कोई उत्पन्न हुआ है और न कोई उत्पन्न होगा।

इसी विषय को निम्न मंत्र में विस्तार दिया गया है।

नकिष्टवद्रथीतरो हरीयदिन्द्र यच्छसे।

नकिष्ट्वानु मज्मना न किः स्वश्व आनशे।।साम. 950

अर्थ-(नकिः) न कोई (त्वत्) तुझ से बढ़कर (रथीतरः) महारथी (हरी) वायु और अग्नि को (यत्) जिस कारण (इन्द्र) हे परमेश्वर (यच्छसे) नियम में रखता हैं (नकिः) दूसरा कोई नहीं (त्वा अनु) तेरे समान (मज्मना) बल में (नकिः) कोई नहीं (स्वश्व) हे व्यापक (आनशे) प्राप्त कर सकता है।

भावार्थ-ब्रह्म के समान या उससे महान् कोई दूसरा देव नहीं है। वही वायु और अग्नि को निमंत्रित रखता है।

परमात्मा ही सृष्टि का रचने वाला है। वह सर्वव्यापक है और हम सबका पोषण भी कर रहा है।

केतुं कृण्वन् दिवस्परि विश्वा रूपाभ्यर्षसि।

समुद्रः सोम पिन्वसे।।सामवेद मंत्र संख्या 959

अर्थ-(केतुम्) सृष्टि रचना रूप कर्म को (कृण्वन्) करता हुआ (दिवःपरि) द्युलोक से परे (विश्वा) अन्य सारे (रूपा) रूपों में (अभ्यर्षसि) व्यापक हो रहा है (समुद्रः) सब प्राणियों को सुख देने वाला (सोम) हे परमात्मा (पिन्वसे) सबका पोषण करता है।

निम्न मंत्र पुनः इसी विषय को विस्तार दे रहा है।

स सुन्वे यो वसूनां यो रायाजानेता इडानाम्।

सोमो य सुक्षित्तीनाम्।।सामवेद मंत्र संख्या 1066

अर्थ-(सः) वह (सुन्वे) उत्पन्न करता है (यः) जो (वसूनाम्) वस्तुओं को (यः) जो (रायाम्) धनों को (जानेता) प्राप्त कराने वाला है। (यः) जो (इडानाम्) प्राणियों का (सोमः) परमेश्वर (यः सुक्षित्तीनाम्) जो सुन्दर भू भागों को।

भावार्थ-परमात्मा ही सम्पूर्ण सृष्टि का रचनाकार है।

अब हम अथर्ववेद के आधार पर ब्रह्म के स्वरूप पर विचारते हैं।

इन्द्रं मित्रं वरूणमग्निमाहुरथो दिव्यःस सुपर्णो गरूत्मान्।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहु।।

अथर्व. 9.10.27

अर्थ-(विप्राः) अपने को विशेष रूप से ज्ञान से परिपूर्ण करने वाले लोग (एकम् सत्) उस अद्वितीय सत्ता को ही (बहुधा वदन्ति) भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। (इन्द्रम्) उस सत्ता को ही इन्द्र (मित्रम्) मित्र (वरूणम्) वरूण (अग्निम्) अग्नि (आहुः) कहते हैं। (अथ,उ) और निश्चय से (सः) वे प्रभु ही (दिव्यः) दिव्य सब ज्योतियों में दीप्त होने वाले हैं। (सुपर्णः) पालनादि उत्तम कर्म करने वाले हैं। (गुरूत्मान) ब्रह्माण्ड संकट का भार वहन करने वाले हैं। उस अद्वितीय ब्रह्म को ही (अग्रिम्) आगे ले चलने वाला (यमम्) सर्व नियन्ता यम (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में सर्वत्र व्याप्त मातरिश्वा (आहुः) कहते हैं।

भावार्थ-ब्रह्म एक ही है। अनन्त गुणों के कारण उस के अनन्त नाम हैं।

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।

तदेव मन्येऽहं तदु नान्येति किं चन।। अथर्व. 10.8.16

अर्थ-(यतः) जिस प्रभु के द्वारा (सूर्यः उदेति) यह सूर्य उदय को प्राप्त होता है (यत्र च) और जिस प्रभु के आधार में ही (अस्तं गच्छति) अस्त होता है। (तत् एव) उस परमात्मा को ही (अहं ज्येष्ठम् मन्ये) मैं सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ। (उ) और (तत्) उस ब्रह्म को (किञ्चन् न अन्येति) कोई भी लांघ नहीं सकता है।

अथर्ववेद का कहना है कि सम्पूर्ण वेदों के अध्ययन का एक ही लक्ष्य है ब्रह्म को जानना।

ऋचो अक्षरे परमे व्योऽमन्यस्मिन्देवा अधिविश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्ते अभी समासते।।

अथर्व. 9.10.18

अर्थ-(ऋचः) ऋचाएं (अक्षरे) इस अविनाशी प्रभु का वर्णन कर रही हैं। जो कि (परमे) परम है सर्वोत्कृष्ट है। प्रकृति 'अपरा' है, जीव 'वर' और प्रभु 'परम' हैं।

ये ऋचाएं प्रभु का वर्णन करती हैं जो कि (व्योमन्) जिसके एक कंधे पर प्रकृति है और दूसरे पर जीव है। (यस्मिन्) जिसमें कि (विश्वे देवाः) सब देव (अधि निषेदुः) अधीन होकर स्थिर हो रहे हैं। (यः) जो (तत् न वेद) उस प्रभु को नहीं जानता वह (ऋचाः) ऋचाओं से (किं करिष्यति) क्या लाभ होगा। (ये) जो (इत्) इस निश्चय से (तत् विदुः) उस व्यापक परमेश्वर को जानते हैं (ते अमी) वे लोग (समासते) इस संसार में सम्यक् आसीन होते हैं।

आर्य माडल सी.सै.स्कूल बठिंडा में स्वतंत्रता दिवस मनाया

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की प्रमुख शिक्षण संस्था आर्य माडल सीनियर सैकेंडरी स्कूल बठिंडा द्वारा 74वां स्वतंत्रता दिवस कोविड-19 के चलते बड़े सादे ढंग से मनाया गया। आर्य माडल सी.सै.स्कूल के प्रधान श्री अश्विनी मोंगा जी ने तिंगा झंडा फहरा कर तिरंगे को सलामी दी। इस मौके पर बोलते हुये उन्होंने कहा कि यह आजादी हमें बड़ी शहादतों के बाद मिली है। उन्होंने कहा कि देश की वर्तमान अवस्था पर दृष्टि ड़ालने से ज्ञात होता है कि स्वतन्त्रता के पश्चात भारत सांस्कृतिक, चारित्रिक, नैतिक दृष्टि से पतन की ओर अग्रसर है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात देश की उन्नति, खुशहाली और तरक्की के बारे में हमारे शहीदों ने सपना देखा था वो सपना अधूरा ही रह गया है। आज देश में अनेक प्रकार की बुराईयां फैल रही हैं, बलात्कार की घटनाएं दिन प्रतिदिन बढ़ रही हैं, युवा वर्ग नशे में अपने यौवन को बर्बाद कर रहा है। जो देश कभी विश्व गुरू कहलाता था, जिस देश की गौरव गाथा दिशा-दिशाओं में गाई जाती थी, जिस देश में लोग चरित्र की शिक्षा लेने के लिए आते थे, जो देश कभी सोने की चिड़िया कहलाता था। आज वही देश अनेक प्रकार की बुराईयों, कुरीतियों पाखण्ड़ों से जकड़ा हुआ है। जिस देश में चरित्र की शिक्षा दी जाती थी, आज वही देश चरित्रहीनता का शिकार हो रहा है। जिस युवा वर्ग को राष्ट्र के उत्थान में अपना योगदान देना चाहिए था, आज वही युवावर्ग नशे की चपेट में आकर अपनी जवानी को बर्बाद कर रहा है। जिस देश की युवाशक्ति चरित्रहीन हो जाती है, उस राष्ट्र का भविष्य अन्धकारमय हो जाता है।

आर्य माडल सी.सै.स्कूल बठिंडा में स्वतंत्रता दिवस मनाया गया। इस अवसर पर स्कूल के प्रधान श्री अश्विनी मोंगा जी तिरंगा फहराते हुये

जो देश अपनी समृद्ध संस्कृति और सभ्यता के लिए प्रसिद्ध था, आज वही देश दूसरों की संस्कृति और सभ्यता को अपनाकर अपने आपको श्रेष्ठ समझता है।

आज का मनुष्य अंग्रेजों की संस्कृति, सभ्यता, उनका रहन-सहन, खान-पान, दिनचर्या, रात को लेट सोना, सुबह लेट उठना आदि अपनाकर अपने आपको आधुनिक समझता है। उन्होंने अध्यापकों को सम्बोधित करते हुये कहा कि आप सब बच्चों में बचपन से ही देशभक्ति की भावना का विकास करें। बच्चे ही इस देश के भविष्य हैं उनमें अभी से ही देश भक्ति की भावना जागृत होगी तो वह देश को अच्छे से संभाल पाएंगे। उन्होंने कहा कि बच्चों के निर्माण की जिम्मेदारी अध्यापकों पर है क्योंकि माता पिता के बाद बच्चों के नजदीक सबसे ज्यादा अध्यापक रहते हैं। इस मौके पर सचिव श्री सुरेन्द्र गर्ग, वरिष्ठ उप प्रधान श्री गौरी शंकर, श्री जनेश सिंगला, श्री अनिल अग्रवाल, श्री सतपाल बांसल, श्री पवन तायल, श्री दविन्द्र बांसल एवं स्कूल प्रिंसीपल विपिन गर्ग व स्टाफ उपस्थित था।

-विपिन गर्ग प्रिंसीपल

दोआबा आर्य सी.सै.स्कूल नवांशहर के प्रिंसीपल श्री राजिन्द्र सिंह गिल पंजाब स्कूल शिक्षा बोर्ड की 12वीं परीक्षा में विद्यालय की प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय आई छात्राओं को सम्मानित करते हुये। इस अवसर पर उन्होंने कहा कि प्राय: देखा जाता है कि जो बच्चे अधिकतर परिश्रमी और पुरूषार्थी होते है वही शिक्षाकाल में सबसे आगे रहते हैं। ऐसी संतानें न केवल माता पिता का नाम रोशन करती हैं बल्कि देश के लिए भी उनका जीवन प्रशंसनीय होता है और वे देश के अच्छे नागरिक बनकर देश की उन्नति और तरक्की में अपना योगदान देते हैं। धन्य हैं ऐसे माता-पिता जो बच्चों के निर्माण करने में अपनी सब सुख सुविधाओं को त्याग कर अपना जीवन साधनामय बनाते हैं। ऐसे माता-पिता अपनी दिनचर्या ऐसी बनाते हैं जो संतान के लिए प्रेरणादायक बन जाती है। संतान व्यवहार की सभी बातें जैसे समय पर सोना जागना, समय पर अपने सभी कार्य सम्पन्न करना, खान-पान पर ध्यान देना आदि सभी बातें संतान पर प्रभाव ड़ालती हैं।

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूत: सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्।।

-अथर्व. ११.४.१

भावार्थ-हे परम पूजनीय चैतन्यमय परमप्रिय परमात्मन्! आपको हमारा नमस्कार है। अनेक ब्रह्माण्ड रूप जगत् के स्वामी आप ही हैं, आपके ही अधीन यह सब-कुछ है और आप ही इसके अधिष्ठान हैं, क्षण-भर भी आपके बिना यह जगत् नहीं ठहर सकता।

वेदवाणी

हम सत्यवादियों की शरण में रहें

ऋतावान ऋतजाता ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विष:।
तेषां व: सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नर: स्याम ये च सूरय:।।

-ऋक्० ७।६६।१३

ऋषि:-**वसिष्ठ:**।। देवता-**आदित्य:**।। छन्द:-**आर्षीभुरिग्बृहती**।।

विनय-हे आदित्यो! हम अब तुम्हारे 'सुम्न' में रहना चाहते हैं, तुम्हारे सुख व ऐश्वर्य में बसना चाहते हैं। अभी तक हम तुम्हारी महिमा नहीं जानते थे, तुमने जो अखण्ड ब्रह्मचर्य धारण करके दिव्य प्रकाश प्राप्त किया है और आदित्य बने हो, उसका सामर्थ्य नहीं समझते थे। तुम तो इस संसार के 'नर' हो, नेतृत्व करने वाले हो। तुम संसार-नेता यदि हमें अपनी शरण प्रदान करोगे तो हम अवश्य कृतकृत्य हो जाएँगे, परन्तु हम तुम्हारी इस सर्वश्रेष्ठ सुखमय शरण को तभी प्राप्त कर सकेंगे जब हम सत्यसेवी हो जाएँगे। हम जानते हैं कि तुम कितने भारी 'ऋत' के उपासक हो और कितने घोर 'अनृत' के विरोधी हो। तुमने जो इतना ऊँचा पद प्राप्त किया है उसका रहस्य यही है कि तुमने अनन्यभाव से सत्य का सेवन किया है। जब कोई मनुष्य सत्य का आराधन शुरू करता है तो सबसे पहले यज्ञ के, त्याग के महान् सत्यसिद्धान्त का प्रकाश हो जाता है, इसीलिए 'ऋत' शब्द यज्ञ का भी वाचक हो गया है। तुम न केवल सत्य व यज्ञ से पूर्णतया युक्त हो, 'ऋतावान्' हो, अपितु तुम तो 'ऋतजात' भी हो, तुम ऋत से उत्पन्न हुए हो, तुमने अपने-आपको बिल्कुल बदलकर सत्य में अपना दूसरा जन्म प्राप्त किया है, तुम्हारा अणु-अणु सत्य का बना हुआ है, यज्ञभावना से भावित है और अब तुम्हारा जीवन सत्य के ही बढ़ाने में लगा हुआ है। तुम 'ऋतावृध्' हो। अनृत को हटाकर निरन्तर सत्य की वृद्धि कर रहे हो। इसलिए तुम अनृत के घोर शत्रु हो। अनृत के साथ तुम्हारा सहज वैर है। जहाँ तुम हो वहाँ अनृत नहीं ठहर सकता। तुम अनृत की छाया तक को नहीं सहन कर सकते। इसलिए हे नरो! हम भी अब सत्यसेवी होकर ही तुम्हारे 'सुम्न' को प्राप्त करना चाहते हैं, तुम्हारे सर्वश्रेष्ठ शरणतम सुख को प्राप्त करना चाहते हैं। हम ही नहीं किन्तु हमारी तरह और भी जो कोई तुम्हारी इस महिमा को जानते हैं, जो 'सूरि' व ज्ञानी हुए हैं उन सबको, हे आदित्यो! उन सबको तुम अपना सुख प्राप्त कराओ, सर्वश्रेष्ठ शरण देने वाला अपना महान् सुख प्राप्त कराओ।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड़ जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित।
सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**